संदर्श

अरुण वीर सिंह

प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली

प्रकाशक : प्रतिभा प्रतिष्ठान, १६८५, दखनीराय स्ट्रीट, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली- ११०००२ सर्वाधिकार : सुरक्षित / संस्करण: प्रथम, १९९४ / मूल्य : पचास रुपए/मुद्रक : राधा प्रेस, दिल्ली

SANDARSH poems by Dr. Arun Vir Singh ISBN 81-85827-21-4 Rs. 50.00

प्राक्कथन

डॉ. अरुण वीर सिंह समकालीन कविता के संधिबिंदु पर अवस्थित आधुनिक चेतनासंपन्न कवि हैं। यह संधिविदु गीत और कविता का भी है। और परंपरा तथा आधुनिकता का भी। इन संधियों के वैविध्य को समझते हुए युवा कवि ने इस प्रथम संग्रह में छंदबद्ध और छंदमुक्त दोनों प्रकार की रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। सामाजिक विद्रूप और अपसंस्कृति के वातावरण की सांकेतिकता के साथ ही मानव मन की भावना और संवेदनशीलता भी 'संदर्श' में अभिव्यक्त हुई है।

दुरभि संधियों के युग में संधियों को आत्मसात करते हुए अरुणजी और भी नए और अधिक पुष्ट रूप में हिंदी काव्य को समृद्ध करें, इन्हीं शुभकामनाओं के साथ मेरी बधाई !

-वीरेंद्र मिश्र

५ फरवरी, १९९४

डी / ११६, सरोजिनी नगर

नई दिल्ली - ११००२३

आत्म कथ्य

'संदर्श' मेरी अभिव्यक्ति का पहला पड़ाव है जो अपने मुद्रित रूप में पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हो रहा है। जो सापेक्ष है, जो सामने है और भोगा हुआ सच है, युग परिदृश्य पर वही 'संदर्श' है। कविता व्यक्तिगत अनुभूतियों को दूसरे तक पहुँचाने की प्रक्रिया है। अंतर्मन की अनुभूति व्यक्तिगत होते हुए भी सार्वजनीन है। दूसरे शब्दों में यदि कहूँ तो प्रस्तुत संग्रह यादों से जुड़ा हुआ और उन्हें आत्मसात किए हुए है। इसे कविता नाम देना शायद अभिव्यक्ति के प्रति न्याय नहीं होगा। इस शब्द मात्र से सृजन की पीड़ा का बोध नहीं हो पाता।

'संदर्श' गत बारह वर्षों में लिखी गई रचनाओं का संग्रह है। युग सम्मोहन और युग परिवर्तन की अनंत धाराओं से स्वयं को अछूता नहीं रख सका हूँ। इस संग्रह में स्वभावतः कविता अलग-अलग मोड़ों पर अपनी पहचान ढूँढ़ती नजर आएगी।

प्यार निर्विवाद रूप से मानव जीवन का सबसे बड़ा सच है, दर्शन है। तथा 'सत्यं शिवं, सुंदरम्' का शाश्वत दर्पण भी इस काव्य यात्रा में साथ चले सभी अपनों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ। मेरी पत्नी रेनू, बेटियाँ अंकिता व मनाली इस यात्रा की साक्षी रही हैं और उन्होंने मर्म को अंगीकार भी किया है। उनके प्रति मात्र औपचारिकता का भार निर्वाह नहीं करना चाहता। हिंदी नवगीत परंपरा के समकालीन हस्ताक्षर आदरणीय कविवर वीरेंद्र मिश्रजी के प्रति आभारी हूँ जिन्होंने अपने स्नेह और आशीर्वाद से 'संदर्श' को प्राणमय किया है। 'संदर्श' कितनी अधखुली गाँठे खोल सकेगा, हूँ

कह नहीं सकता, पर, साथ ही अग्रज कवि बंधुओं, सुधी पाठकों और अपने मित्रों का आशीर्वाद इस पहले पड़ाव पर चाहता हूँ।

-अरुण वीर सिंह

वसंत पंचमी, संवत् २०५०

ए/५, पटेल नगर प्रथम,

गाजियाबाद

कविता-क्रम

संदर्श	११
पिघलती चाहत	१३
होने न होने में	१४
नेह में तुम्हारे	१७
अनुरागी खुशबू	१९
वेदना	२१
नयनों की भाषा	२३
दीपशिखा	२५
आहट	२७
अकेला हूँ	२८
बहुत याद आते हो	२९
मन नहीं लगता	३०
अधिकार	३२
मनुहार का नाता	३४
जीवन- पल	३५
दृष्टि	३६
कनुप्रिया	३८
पुकारता कौन ?	३९
पत्र लिखा है	४१
शब्दहीन संबोधन	४३
कविता है मेरी	४४
नन्ही कोपल	४५
तुम मेरे मीत हो	४६
संतृप्त अंकन	४७

तिमिर	४८
नवन	५०
वो पल	५१
युग राधा	५३
नियति	५४
कुछ रीत गया है।	५५
तुम्हारा प्यार	५६
कथा प्यार की	५७
कब अवतरित होगे ?	५९
मन की अनबूझ व्यथा	६१
माटी मेरे देश की	६३
मान्यताओं की होली	६५
जीवित जीवाश्म	६६
दावाग्नि	६८
युवा दृष्टि को नमन	७०
शाश्वत सत्य है यह	७२
प्राकृतिक वरण	७४

संदर्श

संदर्शों में
सारा संबंध
जिया मैंने !
जब-जब खोया
अपनों को,
संदर्श
पनीली आँखों के
सपनों को,
सहमी,
आशंकाओं का,
मणिबंध जिया मैंने ।
संदर्शों में सारा
संबंध जिया मैंने..(१)
आते-जाते
पल-छिन्,
अनकही
कथाओं से,
रस में भीगी पलकें
संदली हवाओं से
रंध्र बिना
प्रतिपर्ण
जिया मैंने ।
संदर्शों में सारा
संबंध जिया मैंने...(२)
नव विहान की
नव उड़ान,

संदर्श

नव चेतन
झूला बन जाएँ
आशाएँ
नव-नव गीत सुनाएँ
गीतों की लहरी पर
क्षितिज का संपूर्ण
प्रतिबंध, जिया मैंने
नेह की गठरी पर
अनुबंध, जिया मैंने
संदर्शों में सारा
संबंध जिया मैंने (३) *

पिघलती चाहत

दृष्टि की सीमाओं तक
पहचान ढूँढ़ती चाहत
पिघलने लगी है !
बर्फ-सी सालती
नीली धुँधली,
खामोशी में
तारों के साथ दूर तक झाँकी
सुनसान चाँदनी में.
अनजान बनती आहट
सँभलने लगी है
पहचान ढूँढ़ती चाहत
पिघलने लगी है (१)....
दिवस की गाँठ ठहर
रुक जा
पहर-दो पहर
युगल पखुंड़ियों को
जरा दहकने दे
मेदिनी को भी
महकने दे
बूँद एक ओस की
तरलने लगी है।
दृष्टि की सीमाओं तक
पहचान ढूँढ़ती चाहत
पिघलने लगी है.... (२) *

तुम्हें सौंपता हूँ

मैं तुमको
तुम्हें सौंपता हूँ ।
प्यार की
मनुहार के लिए,
दिग्भ्रमित
प्रतिकार के लिए,
अंधे अंधकार के लिए,
दिवास्वप्न साकार
के लिए, बंद पलकों पर
शीत बोता हूँ
मैं तुमको
तुम्हें सौंपता हूँ (१)
स्मृतियों के
तार के लिए
बीते पलों के
पार के लिए,
संयम के
तुम्हें सौंपता हूँ
द्वार के लिए
मधुमय मेरे
प्यार के लिए,
लव लहरों पर
गीत बोता हूँ
मैं तुमको
तुम्हें सौंपता हूँ--(२) *

होने-न-होने में

आधार तुम्हारा
रंग तुम्हारा परिभाषाओं का
संग तुम्हारा
होने न होने में
फिर भी
बहक गए क्यों
अर्थ तुम्हारे
व्यर्थ तुम्हारे
कुछ-न-कुछ
खोने में
मेरे होने,
होने में । (१)
संग तुम्हारा
आभार तुम्हारा
कुछ देने
न देने का
अधिकार तुम्हारा
फिर भी महक
गए क्यों
अंग तुम्हारे
संग तुम्हारे संदीलेपन को छूने में
मेरे होने
न होने में । (२)

साकार तुम्हारा
प्यार तुम्हारा
अभिनव का
प्रतिहार तुम्हारा
फिर भी दहक
गए क्यों
अधर तुम्हारे
अधरों को
छूने में
छन-छन होने में
मेरे होने,
न होने में । (३)
जीत तुम्हारी
हार तुम्हारी
अमृत की
हर धार तुम्हारी फिर भी
छलक गए क्यों
अश्रु तुम्हारे
सागर को
मिलने में
कल-कल होने में
शर्मीलेपन को
छूने में
मेरे होने,
न होने में। (४) *

नेह में तुम्हारे

नेह में तुम्हारे
कविता ग़ज़ल हो गई है ।
देह अनुरागी हो चली
आँख सजल हो गई है ।
समर्पण
चंदन हो गया,
अर्पण
वंदन हो गया,
अभिव्यक्ति थी कठिन,
सदा से
प्यार की सृष्टि में,
गेह पाकर तुम्हारा
अभिव्यक्ति सरल हो गई है ।
नेह में तुम्हारे
कविता गजल हो गई है । (१)
मयूरी मन
नंदन हो गया
सिंदूरी तन
चंदन हो गया
कामना की चाह थी
सदा से,
कठोरता-सी दृष्टि में,
पाकर देह ये तुम्हारी
कठोरता तरल हो गई है ।
नेह में तुम्हारे

कविता ग़ज़ल हो गई है । (२)

चाह नहीं की थी

तुम्हारी सदा से

आँधियों में क्यों

दीपक बुझाते रहे

आह पे मेरे तुम

कामना का नगर

सजाते रहे

साथ पाकर दुबारा

इस मोड़ पर तुम्हारा

साधना सजल हो गई है

नेह में तुम्हारे

कविता ग़ज़ल हो गई है । .....(३) *

अनुरागी खुशबू

तन महँका
अनुरागी खुशबू,
बासंती मन हुआ
खुलने लगीं गाँठें,
कल्पनाओं के गीत
सृजन करता रहा
मुट्ठियों में
अनकही व्यथा बाँधे
बासंती मन हुआ
अनुरागी खुशबू
खुलने लगी गाँठे । (१)
साँझ ढली, गोधूली हुई
ताप-धर्म छोड़ा है
निशा की सीढी है
निहित मर्म थोड़ा है
पाकर बताता
अंक में छिपाता
महँक माटी की
रेशम के पंख
लगाता
आकर मिल जाओ
अभिशप्त जन्मों के शाप को
मिलकर साकार बाँटें,
बासंती मन हुआ
खुलने लगी गाँठे ।--(२)

सूनी धरती
सम्मोहन प्यार का
घिरकर जो चली घटा
भाव ले दुलार का
लहलहाया
धरती का आँचल,
अव्यक्त साँसें
पहलू में बाँधें
बासंती मन हुआ
खुलने लगीं गाँठें। (३) *

वेदना

प्रखर वेदना हो
तो क्या
वेदना ही सही
पहर के
आगोश तुम
चेतना ही सही
प्रखर वेदना'(१)
वर्ष बीते
पलों में
समय के सुधि
छलों में
छलने की
व्यथा में
शाकुंतलम् की
कथा में
कल्पना हो
कवि की
कल्पना ही सही
रूप की इंद्रधनुषी
अल्पना हो
अल्पना ही सही ।''''(२)
कच्चे घड़े पर
तैरती रही
साहिल की
मौजों में

डूबती रही
सोहनी हो तुम
अपने माही की
सोहनी ही सही ।
मेधना हो
इंद्र की,
कृष्ण की मोहिनी
ही सही
प्रखर वेदना हो
तो क्या
वेदना ही सही । (३)
स्नेह बंधन
तिमिर के पार
सजता रहा,
कामना का नगर
हवन बन
जलता रहा,
हवन बन आराधना हो
आराधना ही सही,
कल्पनाओं के
पंख पर
साधना हो
साधना ही सही
प्रखर वेदना हो
तो क्या
वेदना ही सही । (४)

नयनों की भाषा

तुम नयनों की
भाषा पढ़ लो
फिर गाऊँगा ।
यादों की सहमी घाटी में
सुधियों की
छन-छन है,
तेरी साँसों के झुरमुट में
डूबा यह
उन्मन मन है,
जलतरंग बन जा
तू मेरी
मैं वीणा तेरी बन जाऊँगा
तुम नयनों की भाषा (१)
तुम संगराश बन जाओ
मैं निःश्वास
पाषाण बन जाऊँगा
प्राण फूँक दो
उर में मेरे
मैं युग कुषाण
बन जाऊँगा
छू लो तुम,
महक उठे
परिवेश हमारा
मैं माटी

चंदन हो जाऊँगा
तुम नयनों की भाषा (२)
शब्द चूम लो तुम मेरे,
मैं अंबर - अंबर पर
लिख जाऊँगा
नयन चूम लो
तुम मेरे,
मैं धरती - धरती पर
बिछ जाऊँगा
रीत तोड़ दो
तुम पीढ़ी की
मैं सिंदूरी दर्पण
बन जाऊँगा
तुम नयनों की भाषा (३)
घटा काँपती है देखो
यह किरणों का स्पंदन होगा
रेनू बसेगी साँसों में
यह सूरज का अभिनंदन होगा
सुमन खिलेंगे डाल-डाल पर
सारिका की कूहू-कूहू में
यह वसुधा का वंदन होगा
रंग स्पर्श कर दो
तुम सब अपना,
मैं सतरंगी चूनर
बन जाऊँगा
तुम नयनों की भाषा (४)

दीपशिखा

दीपशिखा की
प्यासी लौ,
कैसे कोई प्यास बुझाए ?
तन-मन काँप-काँप रह गए
अनबोली ठिठुरन भर जाए
निस्तेज काँपती लौ में
कौन अमरता का अब दीप जलाए
दीपशिखा (१)
बीता सपना तिर- तिर आए
अनचाही-सी अग्नि लगाए
मन की रेतीली धरती पर
याद तुम्हारी उग-उग आए
दूर मुसाफिर कहीं चमन में
छलनाओं के गीत सुनाए
दीपशिखा (२)
नहीं चाहिए प्राण मुझे
नहीं चाहिए नश्वर श्रृंगार मुझे
छू सके जो तेरी साँसों को
वांछित है वह अधिकार मुझे ।
टूटा अब साँसों का बंधन,
हम तो बैठे हैं
जन्मों की आस लगाए
दीपशिखा (३)
शब्द उड़े मन आँगन में
मधुमासी अलतासी

आस लिए ।

कोई सपेरा

फिर बीन बजाए

आलिंगन सपनों

को पास लिए,

युगों-युगों की प्रणय कथा में

धरा-गगन को कौन मिलाए ?

दीपशिखा (४)

टेसू के फूलों में डूबी

स्निग्ध, मोहिनी शाम बसाए

पल-पल उर के स्पंदन में

आलिंगन में वह बँधती जाए

आज जलधि से माँगूँ अमृत धारा

बूँद-बूँद मोती बन जाए

दीपशिखा' (५)

उपहासित नयनों की भाषा

मोर हृदय का डूबा जाए

साँसों की मर्माहत गाथा

फिर कैसे आवाज लगाए

स्नेहसिक्त मन की धड़कन को

कौन सुने कैसे सहलाए ?

पलट गए पृष्ठों पर

नेहा का अंकन

कौन लगाए ?

दीपशिखा की प्यासी लौ.

कैसे कोई प्यास बुझाए ? (६) *

आहट

अधखुली बाँहें
आहट पर तुम्हारे,
मौन खड़ी हैं !
युगों से
उग आई है
राहों में
नागफनी की दूब
कठिन तुम्हारे
गाँव की राहें
चाहत पर तुम्हारे
सुनसान रुकी हैं।
आहट पर (१)
मेरी हर उड़ान
जाकर खत्म होगी
तुम पर
मैंने पंखों को
बिखरा दिया है।
राहों में तेरी
क्षत-विक्षत पंख,
क्षितिज अनंत,
उड़कर पहुँचूँ कैसे
तेरी गाँव की राहें
अनजान पड़ी हैं
आहट पर तुम्हारे
मौन खड़ी हैं---(२)

अकेला हूँ

दूर-दूर लहरों तक
अकेला हूँ (१)
अतृप्त सी प्यास लिए,
मिलन की आस लिए
भावों के प्राणमय संगीत से
सपनों को पास लिए
एकाकीपन से आलिंगत
सपेरा हूँ
दूर-दूर लहरों तक''''(२)
अनगिनत सपने हैं
अनचाहे,
मेरे मन में
खोया है मेरा अपनापन
संदर्भों के सूनेपन में
मैं अनजान राही अकेला हूँ
दूर-दूर लहरों तक. (३)
समय के पटल पर
चित्र जो सजाए थे,
आज कठिन वेला में
स्वयं ही मिटाए हैं,
बिखरे तिनके
टूटा नीड़
मैं बसेरा हूँ
दूर-दूर लहरों तक
अकेला हूँ (४)*

बहुत याद आते हो

तुम बहुत याद आते हो ।
मखमली दूब पर
चाँदी की पायलयुत,
झनकते तेरे पाँव
कैनवास पर अनजान
चित्र बनाते,
नयनों में ना जाने,
कैसे उग आते हो ?
तुम बहुत याद आते हो ॥ १ ॥
शाम की उदासी में
डूबती दिशाएँ हैं,
आँखों में बसी काजल
मोती-सी झील
मुझे दूर बहा ले जाते हो ।
तुम बहुत याद आते हो ॥ २ ॥
मलय सुरभि
हाथों में
मेरा ही चेहरा है ।
झलक नहीं पाता यह
राज बड़ा गहरा है,
पागल हवाओं में
मुझे कहाँ उड़ा लिए जाते हो ?
तुम बहुत याद आते हो
तुम बरबस याद आते हो ॥ ३ ॥*

मन नहीं लगता

ओस, भीगे चुंबन
बरसाती रही,
मेरा मन नहीं लगता ।
बाँहें, बंधन हित,
निशि भर तरसाती रहीं
मेरा मन नहीं लगता (१)
स्तब्ध हैं दिशाएँ
सहमी-सहमी आशाएँ
पर्वतों के आँचल में
उदास हैं सदाएँ
पास आने को मन व्याकुल
मेरा मन नहीं लगता
अधर, अधरों को
छूने को आतुर
मेरा मन नहीं लगता. (२)
संदेश मिलन का
आता रहा
अनुरागी मन
बहकाता रहा
कलाई कंगन चूड़ियाँ
मचलती रहीं
मेरा मन नहीं लगता
पाँव में चाँदी की पायल
खनकती रही
मेरा मन नहीं लगता (३)

संयम की सीमाएँ
लरजती रहीं
नयन की घटाएँ
बरसती रहीं
छलकता नयन का रंग
श्लेष्मी,
मेरा मन नहीं लगता
वह चंदन की गंध, रेशमी
मेरा मन नहीं लगता----(४)

अधिकार

अधिकारों की
इस आँधी में
हर अधिकार
तुम्हारा है,
शब्दों की
स्वर लहरी पर
केवल प्यार
तुम्हारा है.... (१)
तरल धूप को
या छाया में
तुझको सुरभित
संसार मिले |
स्वर्णिम किरणों से
भर-भर कर
अंजुलि भर स्वप्निल
श्रृंगार मिले
जिस दर्पण में तुम देखो
उस दर्पण का प्यार
तुम्हारा है
अधिकारों की इस आँधी में
हर अधिकार तुम्हारा है (२)
मेरे गीत तुझे सुलाएँ
मेरे शब्द तुझे जगाएँ
नींद की बोझिल पलकों में
सुधियाँ मेरे रह-रह आएँ

सुधियों की प्यासी
नदिया में
फेनिल हर ज्वार
तुम्हारा है
अधिकारों की इस आँधी में
हर अधिकार तुम्हारा है... (३) *

मनुहार का नाता

तुमसे मनुहार का नाता
तोड़ लिया है
उस मोरपंखया शाम में
तेरा खत बाँचना
छुअन के दर्द को
साँसों से बाँटना
लव लहरों को
मोड़ दिया है ।
तुमसे नाता तोड़ लिया है- (१)
अहसास की
अनकही बयारे
अब भी आती हैं
मन को मेरे
सहलाती हैं।
अपनों को भी अपना कहना
मैंने अब तो छोड़ दिया है
तुमसे नाता
तोड़ दिया है...(२)
शब्दों को शब्द दिए मैंने
स्पर्शों को भी प्रतिकार दिया,
जितना पाया था तुमसे
उससे ज्यादा अधिकार दिया,
अधिकार का नाता तोड़ दिया है
तुमसे प्यार का नाता
तोड़ लिया है (३)

जीवन पल

सीमाओं में बाँधकर
जीता रहा जीवन पल
सागर की उच्छल लहरें
बहती रहीं, दिशाएँ अविरल (१)
पूर्णता में
साध कर भी
सदा ही रहा अधूरा
तिमिर में रहा डूबा
प्रारब्ध का सवेरा
तुम्हीं बताओ
मौन भाषाओं का भला
होता कहाँ है ?
कल !
टुकड़ों-टुकड़ों में बाँटकर
जीता रहा जीवन पल...(२)
गेय किसी कविता का
संसार है
यह पल,
पहले-पहले प्यार का
उपहार है, यह पल
पल की शिलाओं पर
गाता रहा
कभी आज कभी कल
टुकड़ों-टुकड़ों में बाँटकर
जीता रहा जीवन पल (३) *

दृष्टि

हथेलियों में छिपा,
चेहरा तेरा,
मुट्ठी भर
याद के साथ
समेटता हूँ
बाँधता हूँ
बिखराता हूँ
साँसों को तेरे,
पर सब मिलकर भी
कोई चित्र
नहीं बना पाते !
ओस में भीगी
तूलिका उदास आँखें
कैनवास पर टँगी,
बिलकुल खामोश हैं।
जीवन, शब्द, परिभाषा
अवसान के चिह्न,
नए सूरज का आगमन
और मैं,
तुम्हारी बिखरी साँसों को
समेटते, सारी दुनिया से
छिपाते, खड़ा मौन,
निहारता हूँ
अपलक तुम्हारी दृष्टि को (१)
एक क्षण

विश्वास का
प्रारब्ध के
आभास का
ठहर गया है
दबे पाँव
ठिठककर
इधर-उधर
देखता हूँ
पृष्ठों को पलटता हूँ,
रंग सफेद
हो गए हैं जिनके ।
अक्षरों ने
छिपा लिया है
स्वयं को
मर्यादा के
आँचल में ।
पलटने की आवाज
हवा के झोंके में,
कागजों को
समेटता हूँ
तोड़ता हूँ
प्रतिबंधों के
सृष्टि को ।
खड़ा मौन
निहारता हूँ
अपलक तुम्हारी दृष्टि को (२)

कनुप्रिया

कनुप्रिया हो तुम
शाम की लालिमा-सी,
दहकते अधर
चंचल यौवन
सपन बेचते
तेरे संयम
मीरा हो तुम
मेरी साधना- सी
कनुप्रिया हो (१)
मौन भाषा
अधूरी परिभाषा
रूप किरन
पावस अभिलाषा
सीता हो तुम
युग मर्यादा जैसी
कनुप्रिया हो तुम (२)
दूब पर बिछे
तेरे पाँव
इमलियों की
गुलाबी छाँव
निर्मल हो तुम
निर्मला सी
कनुप्रिया हो तुम
शाम की
लालिमा-सी । (३) *

पुकारता कौन ?

पुकारता रहा
तुम्हें कौन ?
तैरते बादलों का
संग जाना
खुशियों का,
आँसुओं में नहाना
याद है
अब तक मुझे
प्राणों के
अंत में प्राण भरकर
एक हो जाना तेरा ।
ऋतुएँ बदलती रहीं
सुधियाँ तरसती रहीं
काजल धुलकर
फैलते रहे,
मधुमास आँखों में
तैरते रहे,
ढलते रहे
खामोशी में,
सदियों से
सँवरते साए
तुमको न
आना था
न ही
तुम आए

उन्मादी मन
दिवास्वप्न को
निहारता मौन
पुकारता रहा
तुम्हें कौन ? *

पत्र लिखा है

मैंने तुमको
पत्र लिखा है
दोपहरी की तपन में
रवि की
जलन में,
संदेश है
नमन का
पिछले कई
जनम का
आनेवाला
कल लिखा है
मैंने तुमको पत्र
लिखा है । (१)
शायद मिला हो
पूरा हो या
अधजला हो
उसमें कुछ महक हो,
अंतर भी दहक हो
देहरी पर
नयन प्रहरी पर
अधरों पर अंकन
लिखा है
मैंने तुमको पत्र
लिखा है । (२)
साधना का

आराधना का
शब्दहीन संबंधों का
सांकेतिक
अनुबंधों का
रीति पर प्रीति पर
सहमी साँसों का
स्पंदन लिखा है
मैंने तुमको पत्र लिखा है । (३)
फिर कभी न
लिख पाऊँगा
सारे जग में न
दिख पाऊँगा
न पाओगी मुझे
टूटे नीड़ में
खो जाऊँगा मैं
दुनिया की भीड़ में
नयन कवँल पर
छलछलाते सजल पर
सुख की आह पर
खिलखिलाहट की
चाह पर
अधूरे मिलन को
अविराम लिखा है।
बस तेरा ही
नाम लिखा है
मैंने तुमको पत्र लिखा है । (४)

शब्दहीन संबोधन

संबोधन सारे
शब्दहीन हो गए
प्राण मेरे
मंत्रहीन हो गए.
चाँदनी बिखरी
अलकों में
भीगती रही रात
पलकों में
अधखुली पाँखें
पत्र बाँचते-बाँचते
स्वरहीन हो गए
संबोधन सारे
शब्दहीन हो गए.. (१)
विरह की
डगर में
कामना के
नगर में,
अधजले ज्वर में
मछुआरों के
जाल में
नौका की पाल में,
छलकते अश्रु सारे
अर्थहीन हो गए
संबोधन तुम्हारे
शब्दहीन हो गए..(२)

कविता है मेरी

वो कविता है मेरी
मेरे लिए
सजती है
सँवरती है
बिखर जाती है
आलोकित होकर,
वह सविता है मेरी
हर युग में
प्रकाश देती है
पर मौन पाकर मुझे
रथ पर सवार होकर
दिवस त्याग देती है,
वह सरिता है मेरी
मेरे लिए बहती है
कल-कल करती है
निर्मल शीतल जल की
विरल धार देती है।
चाँदनी भुजाओं को
यो दुलार देती है
वह कविता है मेरी
मेरे लिए
सिर्फ मेरे लिए ।

नन्ही कोंपल

पतझड़ के घर

नन्ही-सी

कोंपल आई है।

कुहू कुहू कर

रैन बिताई ।

अब कोकिल भी

अलसाई है।

पतझड़ के घर नन्ही-सी कोंपल । (१)

सुकोमल तन

अबोध मन

खुशियों के घर

आगमन का स्नेह

वसंत की मस्ती

प्रतिपल लहराई है

पतझड़ के घर(२)

स्वागत में गीत उगे

झूम-झूमकर

अंक भरे

बादलों ने

लहराकर

प्रीत तो जगाई है ।

सबके मनभाई है ।

पतझड़ के घर नन्ही-सी

कोंपल आई है ।*

तुम मेरे मीत हो

पत्थर पर लिखी
कविता हो,
लहरों पर लिखा
गीत हो ।
युगों के अनुबंध पत्र पर
तुम मेरे मीत हो ।
हाँ, तुम मेरे मीत हो- (१)
बाँसुरी की धुन पर
कान्हा के गीत हो ।
हाँ, तुम मेरे मीत हो'(२)
जब भी चढ़े
नभ पर
अँधेरा बढ़ा मन का
नाम तो चाँदनी है
पर झिलमिलाते दीप हो
जाने कैसे दीप हो
तुम मेरे मीत हो
हाँ, तुम मेरे मीत हो
पत्थर पर लिखी..(३) *

संतृप्त अंकन

संतृप्त अंकन
मेघ का
नवजीवन दे गया
बाँझ होती
धरती को
संजीवन दे गया--(१)
महक उठी
माटी देह की
नववधू के
स्नेह-सी
बाल अरुण के
आगमन में सघन
कंचन दे गया
संतृप्त अंकन (२)
घुँघरू झूम उठे
बैलों के साथ में,
मेहँदी लगे
गोरी के हाथ में,
आगमन'
इंद्रधनुषी चाह में
कल की राह में
सजल
अंजन दे गया
संतृप्त अंकन मेध का
नवजीवन दे गया (३) *

तिमिर

पीड़ा के तिमिर में
चाहत का
गर्भ पला है ।
संवेदना के मर्म में
सहचरी ने
फिर छला है... (१)
क्षितिज पर
लिखी है
कथा प्यार की
युगों ने देखी
व्यथा हार की
वचन हारा
सजन हारा
जीत-हार की
कालिमा से पार
अरावली में
धर्म ढला है
सहचरी ने
फिर छला है--(२)
कभी रूप में
कभी धूप में,
कभी दाँव में
कभी छाँव में
मेहँदी लगे
मृदुल पाँव में,

नयन दीप में
स्वाति सीप में
बिदू एक
नयन का
सागर से
मिलने चला है
सहचरी ने
फिर छला है..(३)
नियत साधना- सी
संप्रति आराधना- सी
मौन जड़ों की
खोखली राह में,
तिनके उड़े
चक्रवात की चाह में,
राम ने छुआ था
अहल्या को
जीवन के लिए,
तुम न छूना मुझे
संजीवन के लिए
अभिशप्त स्पर्श,
पत्थरों में
खो गए
जैसे अंधकार में
सूरज पला है
सहचरी ने
फिर छला है. (४) *

अधखुले नयन

संबंधों की ओस में
भीग गये
सब खेत
हरियाली तो नाता सा
जीवन सारा रेत (१)
तिमिर तिरस्कार का
समग्र प्रहार का,
दशों की जीत
पीयूष के हार सा
सहम गईं पगडंडियाँ
आलोकित अंतरालों
के सेतु
संबंधों की ओस में (२)
जगते-जगते सो गए तुम
नींद न आएगी
अब दुबारा साँझ ढली
स्पंदन की,
प्राणमय दिवस
फिर हारा
अधखुले नयनों से
राह बने संकेत
संबंधों की ओस में
भीग गए सब खेत,
हरियाली तो नाता सा
जीवन सारा रेत (३) *

वो पल

शाश्वत बन
जीवित रहेंगे
'वो पल'
तुम्हारे ।
रहेगी कथा
जीत-हार की
संहिता में दफनाई
व्यथा प्यार की,
जीवित रहेंगे 'वो पल'
तुम्हारे (१)
ज्वार उठता ही रहेगा
गागर में
रामेश्वरम के
सागर में,
आश्वस्त बन
जीवित रहेंगे
'अंजुलि वचन'
तुम्हारे
बहती रहेगी सरिता
प्रतिहार की
जीवित रहेंगे 'वो पल'
तुम्हारे (२)
विद्रोह जलता ही रहेगा
तर्पण में
संदेह पलता ही रहेगा

अर्पण में

सदाशय बन

जीवित रहेंगे

'अश्रु जल' तुम्हारे

अग्नि परीक्षा- सी

वैदेही के हार की

जीवित रहेगें 'वो पल'

तुम्हारे'(३) *

युगराधा

लगता है,
युगराधा हो तुम,
या हवन कुंड
की हो ज्वाला ।
'प्रसाद' की
लगती सी
श्रद्धा तुम,
'बच्चन' की हो
मधुशाला ।
या मीरा हो वही,
पिया था जिसने
विष का प्याला
संभावनाओं के
द्वार खड़ी तुम,
लगती हो
प्रज्ञाला
प्रज्ञाला ! *

नियति

उभरना
उभरकर टूटना
विश्वास की
नियति है
इसलिए मैंने
मुक्त कर दिया है
स्नेह के
उन दुष्प्राप्य क्षणों को
कर्तव्य के
निर्लब्ध कणों में,
रेतीले स्पर्श पर
जोलीफिश का दंश
तलुओं को
चुभाता हैं
उड़ते हुए
अँधेरी गुफाओं में
देखता हूँ
किसी के प्यार को
सागर की सीमाओं
से टकराते
गरजते, बिखरते,
नियति तक
पहुँचते
यही विश्वास की
नियति है! *

कुछ रीत गया है

ना जाने कुछ
रीत गया है
विप्लव की
आँधी में
अर्थहीन दिशाएँ डूबी जाएँ
सागर का
अंतर्मन जाने
लहरें कुछ
कहती जाएँ,
मानव-मानव का
बंधन अब
लगता बीत गया है
ना जाने कुछ रीत गया है---(१)
मौन शिलाओं से
टकराती सरिता राह
बनाती जाए
रजनी के पिछले
पहरों में
पहरा मन का
बढ़ता जाए
युग शिल्पी का
रचनाक्रम अनचाहे
क्या टूट गया है ?
ना जाने कुछ
रीत गया है (२)

तुम्हारा प्यार

खो गए हो
तुम सपनों की भीड़ में
सो गए हो तुम
अपनों के नीड़ में ।
अकेला कौन
बादलों को
स्पर्श करता ।
छलकता जल सजल
मेघ में
बरसता मैं अकेला,
रीतता पल-पल
सपनों में ले जाता
स्पर्श पागल
मन बौराता,
घुलता काजल,
शब्द-दर- शब्द
परत-दर-परत
बिखरती चाहत
खोते हुए
महासागर के
अंतःस्थल में,
मेरे हर हार,
की तरह
तुम्हारा प्यार भी
विलीन होता ! *

कथा प्यार की

लिख दी मैंने
कथा प्यार की
रुकी है
हर दृष्टि,
चाहत पर तुम्हारी
तुम बताओ
क्या कहोगे (१)
प्रतीक्षा में
ठहरे पाँव
हर आहट पर तुम्हारे
तुम बताओ क्या कहोगे ?
कह न पाओगे
कभी कुछ भी
मुखर हो,
जानता हूँ मैं
परंतु
सह न पाओगे
मिलन सुखकर हमारा
तुम बताओ क्या कहोगे ?
लिख दी मैंने कथा--(२)
जानता हूँ
हर तरफ से
दौड़ते मृग आ रहे हैं
मैं स्वयं,
कस्तूरिया मृग सा

शोध करता हूँ सुरभि की
मिल न पाई
सत्यता तो
तुम बताओ क्या करोगे ?
लिख दी मैंने कथा (३)
छीन लेते स्वप्न खल तो
जान कर अधिकार अपना
प्रणय की हर
वेदना तुम
छीन लेना एक सपना |
प्रीति की आहट
स्मृति पर छप गई है
तुम बताओ
क्या कहोगे ?
लिख दी मैंने कथा (४)
चुन-चुन कर जो
भरी अंजुलि फूलों से,
मैं अनाम संबोधन करके,
तुम्हें पुकारूँ ।
तनिक आहट पर
रुकी है दृष्टि मेरी,
सुखद चाहत पर तुम्हारी,
तुम बताओ क्या कहोगे ?
लिख दी मैंने कथा प्यार की;
तुम बताओ
क्या कहोगे ? (५) *

कब अवतरित होगे ?

कब अवतरित
होगे तुम ?
धर्म की लिप्सा पर
जाति की
बलिवेदी पर,
बहनेवाले रक्त का
मोल-भाव
लोगे तुम
कब अवतरित --- ?
आशंका की पाषाणी
अँधियारी गुफाओं में
प्रकाश का
पुंज पुल
सदल बल
रामेश्वरम में
बाँधोगे तुम ?
कब अवतरित .... ?
इतिहास के
क्रूर क्षणों में,
महाप्रयाण की
महायात्रा में
शवों के समूह में
विच्छेदन की
क्रिया को सतत
त्राण दोगे तुम ?

कब अवतरित ---- ?
बिखरी समय की
ऊर्मियों पर
महासागर के
धधकते ज्वालामुखी से
लावों के
उबाल को
कोमलता की बौछार
दोगे तुम ?
कब अवतरित----?
टूटन के
कगार पर खड़े हम,
आकाश के
उस पार खड़े तुम
अपनी-अपनी मजबूरी
कराहती, त्राण माँगती
बापू की आत्मा,
अहिंसा से प्रतिपल
बढ़ती रही दूरी,
कुरुक्षेत्र में शंख से,
प्राण मंत्र फूँकते
अभिशप्त पीढ़ियों को
सर्वधर्म समभाव का
उपहार दोगे तुम ?
कब अवतरित
होगे तुम - ? *

मन की अनबूझ व्यथा

परतों पर परतें हैं,
दूर कहीं कुहरे में
धुँधली-सी
आकृतियाँ,
स्मृतियों के पहरे में
जीवन के और निकट
आने की
कोशिश में,
चाहे अनचाहे
पल-पल दूर हुई जाती हैं
राजनीतिज्ञों का
खोखला आदर्शवाद
क्या कभी रोटी
दे पाएगा ?
भावनाओं की
टूटन को
कभी जिंदगी
दे पाएगा ?
साँसें टूट रहीं
वादे बिखर रहे हैं,
काल के
क्रूर हाथों में
इतिहास
काँप रहा है !
क्या आपने कभी

विचारा है ?

कहाँ तक किनारा है ?

कितनी है दीर्घ कथा ?

गहरी है कितनी यह

मन की

अनबूझ व्यथा ?*

माटी मेरे देश की

विषैली तो
नहीं थी
माटी मेरे देश की ।
कोबरे के
सर्पदंश-सी
अद्‌भुत मारक,
हो गया
कैसे यह सब ?
अर्थ जो
सारे बदल गए
निष्क्रिय हो गई
मेहनत
बाँझ-सी होती
धरती,
जर्जर-सा हुआ
पुरुषार्थ, समय की
शिला पर,
मौन भाषाओं
के वृक्ष खड़े हुए
मधुवन में,
माधव की
सतत प्रतीक्षा में
अकल्पनीय,
अंतहीन प्रतीक्षा
रह गई मात्र प्रतीक्षा !

मान्यताओं की होली

युग बदले,
मान्यताएँ बदली
बदल गईं
कुछ होने
'सच होने'
की परिभाषाएँ
झूठ और बेईमान
होने का अर्थ
हजार मनकों में अलग
चमकनेवाला हीरा
ईमानदारी ?
हूँ !
कूड़े में पड़ा आदर्श
कुनैन की गोली - सा
कसैला
मैं टटोलता हूँ ।
अपने आप को
गहरे सागर में
उस बूँद-सा
बंद सीप के
मुँह पर पड़ा,
पानी का एक कण
जो न बूँद बन सका
न ढल सका,
मोती भी तो न

बन सका,
पहचान खोती,
विलुप्त होती
सभ्यताएँ
आओ मिल-जुलकर
जीर्ण मान्यताओं की
होली जलाएँ ! *

जीवित जीवाश्म

पत्थर की लाशों
की भीड़ में
देखता हूँ दूर तक
चट्टानों से
टकराता सागर,
मुझे डर लगता है
अपने आप से,
कराहती मानवता के
शाप से,
बम, धमाके, चीख
चिथड़ा-चिथड़ा लाशें
रह-रह कौंधतीं
चीखतीं साँसें,
बदहवास हर कोई
औरों को छूकर
जीवित होने का
अहसास करता हूँ
बौछारों से भीगे
चश्मे को
साफ करता हूँ ।
पाता हूँ
नितांत अकेला
महानगरीय संस्कृति को !
जो जीवित रहकर
बोल नहीं पाते

मासूम रिश्तों को
तोल नहीं पाते
बढ़ती भीड़ में
कोलाहल नीड़ में
हो गए हैं रिश्ते,
मुर्दों से निस्पंद,
और इनसान हो गया
जीवित जीवाश्म !

दावाग्नि

डूबता क्षितिज
सम्मोहन के पार-सा
पर्वतों की ओट में
डूबता संसार-सा,
बादल बिखरते
राह में भटकते
कल-कल करते
कलरव में
बसेरे को
घर में लौटते ।
था पक्षी एक
नीड़ का
दहक उठा
दावाग्नि चीड़ का
ढूँढ़ता साँस को
डूबते अहसास को ...
सुनसान घाटी की
आग में,
पंखों को जलाता
निरीहता में बुलाता
अंधी घाटी
चीखती आवाजें
लौटती टकराती,
वह जलता रहा
हवन-सा,

मानव के दोहन का
दहन-सा,
वृक्षों के आँसू
सिसकती चीखें
सुनेगा कौन
सब-के-सब
इस हाल में भी
खड़े हैं मौन !
देते उलाहना प्राण की
माँगते विवशता त्राण की,
मुट्ठियों को
छिपाती सभ्यता,
इसे
अनदेखी करती जाती
किसी और वन को
जलाने चली जाती... !
जंगल का
जब-जब
घर जला है,
पेड़ों-पत्तियों के लहू में
मानव का
हाथ सना है,
तब-तब
सभ्यता का
इतिहास बना है !

युवा दृष्टि को नमन

सुदूर दक्षिण छोर पर
इतिहास
सत्य को
अंगीकार करते
स्वयं को
कुरेदते,
आत्मा में
खोजते.
महान् होने का
अहसास |
विश्व में
फैलता
कर्मयोगी की तरह
अटल विश्वास |
युग्म शिलाओं में
लिखी कथा,
पूर्व-पश्चिम
का मिलन |
मानव संस्कृति
के जीवित
होने को
स्वीकार करता है
स्वयं को
देखना, कुरेदना

नरेंद्र दत्त

अंगीकार करता है,

फैलती है खुशबू

अनंत में

सागर की

त्रिवेणी से,

सकल भुवन

है तुम्हारा !

हे युवादृष्टि

नमन है हमारा !

नमन है हमारा ! *

शाश्वत सत्य है यह

शाश्वत सत्य
है यह
स्वीकार
करना ही होगा
अंकित है जो
जीवन का
'प्रतिकार'
सहना ही होगा
शाश्वत सत्य है--(१)
'जिन' हो सकते हो
तुम भी ?
निर्वाण क्यों
खोजते हो !
सिद्धार्थ बनने की
चाह में
परित्राण क्यों
खोजते हो ?
उठो
आगे बढ़ो
उठाओ स्वयं को
जलतल से
उन्नति की लहरों पर,
मानव बनना है तो
आज को
अंगीकार करना ही होगा

शाश्वत सत्य है (२)
विडंबनाओं की
विभीषिका में
संवेदनाओं की
जिजीविषा में,
स्वीकार लो
चुनौती त्राण की
क्यों माँगते हो
फिरौती प्राण की,
ईसा भी बनो
क्रास पर तो
चढ़ना ही होगा
शाश्वत सत्य है यह
स्वीकार करना ही होगा(३)

प्राकृतिक वरण

अस्तित्व का संघर्ष
मासूम बच्चे
की तरह सलोना
अकसर मेरी
अँगुली पकड़ लेता है
तोतली भाषा में
जीवन को
परिभाषित कर देता है,
तभी तो चाँद
माँगता है
खेलने को
सूरज माँगता है
छूने को,
शनैः-शनैः
क्षीण होती
मेरी परवशता में
अनजाने
मुझे बच्चा
बना लेता है
अपने में छिपा लेता है
सतत संघर्ष को
विराम देता है
बूढ़ी लाठी हटा
पैगाम देता है
संघर्ष में श्रेष्ठ

'सुरथ' होने का
नाम देता है,
और मैं
फिर से
युवा हो जाता हूँ
मुट्ठियों को
भींच लेता हूँ,
'डारविन' के
'प्राकृतिक वरण' को
वर लेता हूँ ।
स्वयं को
चयनित कर
लेता हूँ ।
मैं:
सिर्फ मैं !